एक दिन राजा विमलवाहन कि सी कारणवश संसार से विरक्त हो गये जिससे उसे पांचों इन्द्रियों के विषय भोग काले भुजग्ङकी तरह दुखदायी मालूम होने लगे ं वह सोचने लगा कि यमराज किसी छोटे बडे का लिहाज नहीं करता ं अच्छेसे अच्छे और दीन से दीन मनुष्य इसकी कराल दंष्ट्रातल के नीचे दले जाते है ं जब ऐसा है तब क्या मुझे छोड़ देगा ? इसलिये जब तक मृत्यु निकट नहीं आती तबतक तपस्या आदि से आत्म-हित कि ओर प्रवृत्ति करनी चाहिये ं ऐसा विचारकर वह विमलकीर्ती नामक औरस-पुत्र के लिये राज्य देकर स्वयंप्रभा जिनेन्द्र के पास दीक्षित हो गया ं उनके समीपमें रहकर उसने कठिन कठिन तपस्याओंसे आत्म शुध्दि की और निरन्तर शास्त्रों का अध्ययन करते करते ग्यारह अग्ङतक का ज्ञान प्राप्त कर लिया ं मुनिराज विमलवाहन यहीं सोचा करते थे कि इन दुखी प्राणियों का संसार-सागरसे कैसे उध्दार हो सकेगा ? यदि मैं इनके हित-साधन में कृतकार्य हो सका तो अपनेको धन्य समझूंगा ं इसी समय उन्होंने दर्शन विशुध्द आदि सोलह भावनाओं का चिन्तवन किया जिससे उन्हें तीर्थकार नामक पुण्य प्रकृति का बन्ध हो गया ं अन्त में समाधि पूर्वक शरीर त्याग कर पहले ग्रैवेयक के सुदर्शन नामक विमान में अहमिन्द्र हुए ं वहा उनकी आयु तेईस सागर प्रमाण थी, शरीर की ऊंचाई साठ अंगुल थी, और रंग धवल था वे वहां तेईस पक्ष में श्वास लेते थे और तेईस हजार वर्ष बाद मानसिक आहार करते थे ं वे स्त्री संसर्ग से सदा रहित थे ं उनके जन्मसे ही अवधिनज्ञान था, और शरीर में अनेक तरह की ॠध्दियां थीं ं इस तरह वे वहां आनन्द से समय बिताने लगे ं यही अहमिन्द्र आगे चलकर भगवान शंभवनाथ होंगे ं

(२) वर्तमान परिचय

जम्बू व्दीप के भरत क्षेत्र में एक श्रावस्ती नामकी नगरी है ं उस नगरी की रचना बहुत ही मनोहर थी, वहां गगनचुम्बी भवन थे, जिनपर अनेक रग्ङोकी पताकाएं फहरा थीं ं जगह जगह पर अने सुन्दर वापिकाएं थीं ं उन वीपिकाओं के तटोंपर मराल बाल-क्रीडा किया करते थे ं उनके चारो ओर अगाध जलसे भरी हुई परिखा थी और उसके बाद ऊंची शिखरों से मेघोंको छूनेवाला प्राकार कोट था ं जिस समय की यह कथा है उस समय दृढ़रथ नाम के राजा राज्य करते थे ं वे अत्यन्त प्रतापी, धर्मात्मा, सौम्य और साधु स्वभाव वाले व्यक्ति थे ं उनका जन्म इत्वाकु वंश और काश्यप गोत्र में हुआ था ं उनकी महाराणी का नाम सुषेणा था ं उस समय वहां महारानी सुषेणाके समान सुन्दर स्त्री दूसरी नही थी ं वह अपने रू पसे देवाग्ङनाओ को भी तिरस्कृत करती थी तब नर, देवियों की बात ही क्या थी ? दोनों दम्पति सुख पूर्वक अपना समय बिताते थे उन्हे किसी प्रकार की चिन्ता नहीं थी ं ऊपर जिस अहमिन्द्र का कथन कर आये हैं उसकी वहां की आयु जब सिर्फ छह माह की बाकी रह गई तबसे राजा के घरपर प्रतिदिन असंख्य रत्नों की वर्षा होने लगी ं रत्न वर्षाके सिवाय और भी अनेक शुभ शकुन प्रकट होने लगे थे जिससे राजदम्पति आनन्द से फूले न समाते थे ं एक दिन रात्रि के पिछले पहरमें महारानी सुषेणा ने सोते समय ऐरावत हाथी

को आदि लेकर सोलह स्वप्न देखे और स्वप्न देखने बाद मुंह में प्रवेश करते हुए एक गन्ध-सिन्दुर मस्त हाथी को देखाʿ सवेरा होते ही उसने पतिदेव से पुछाʿ राजा दृढ़रथ ने अविधज्ञान से- विचार कर कहा हैʿ कि आज तुम्हारे गर्भ में तीर्थकर पुत्रने अवतार लिया हैʿ पृथिवीतल में तीर्थकर के जैसा पुण्य किसका नही होता हैʿ देखो न ! वह तुम्हारे गर्भ में आया भी नहीं था कि छह माह पहलेसे प्रतिदिन असंख्य रत्नराशि बरस रही हैʿ कुबेर ने इस नगरीको कितना सुन्दर बना दिया हैʿ यहॉं की प्रत्येक वस्तू कितनी मोहक हो गई है कि उसे देखते - जी नहीं अघाताʿ यहां राजा, रानीको स्वप्नों का फल बतला रहे थे वहां भावी पुत्रके पुण्य प्रताप से देवोंके अचल आसन भी हिल गये जिसेस समस्त देव तीर्थकर का गर्भावतार समज कर उत्सव मनानेके लिये श्रावस्ती आये और क्रम-क्रमसे राजा मन्दिर में पहुंचकर उन्होंने राजा-रानी की खूब स्तुती कि तथा उन्हें स्वर्गीय वस्त्राभुषर्णोसे खूब सत्कृत कियाʿ गर्भावतार का उत्सव मनाकर देव अपने अपने स्थानोंपर वापिस चले गये और कुछ देवियोंको जिनमाताक़ी सेवा वहींपर छोड़ गयेʿ देवियोंने गर्भ-शुध्दी को आदि लेकर अनेक तरहसे महारानी सुषेणा की सुश्रुषा करनी प्रारम्भ कर दीʿ राजदम्पति भावी पुत्र के उत्कर्ष का ख्याल कर मन ही मन हर्षित होते थेʿ जिस दिन अहमिन्द्र (भगवान संभवनाथ के जीव) ने सुषेणा के गर्भ में अवतार लिया था वह दिन फाल्गुन कु ष्ण अष्टमीका दिन था , मृगशिर नक्षत्र का उदय था और प्राची दिशा में बाल सुर्य कुम्कुम रंग वरषा रहा थाʿ देव-कुमारियों की सुश्रूषा और विनोद भरी वार्ताओंसे जब रानीके गर्भ के दिन सुखसे बीत गये उन्हें गर्भ सम्बन्धी कोई कष्ट नही हुआ तब कार्तिक शुक्ल पौर्णमासी के दिन मृगशिर नक्षत्रमें पुत्र-रत्न उत्पन्न हुआʿ पुत्र उत्पन्न होते ही आकाश से असंख्य देवसेनाएं-श्रावस्ती नगरीके महाराज दृढरथ के घर पर आईʿ इन्द्रने इन्द्राणी को भेजकर प्रसूति-ग्रहसे जिनबालक को मंगवायाʿ पुत्र-रत्न की स्वाभाविक सुन्दरता देखकर इन्द्र आनन्दसे फुला न समाता थाʿ आई हुई देव-सेनाओंने पहलेके दो तीर्थकरों की तरह मेरू पर्वत पर ले जाकर इनका भी जन्माभिषेक किया और वहांसे वापिस आकर पुत्र को माता-पिता के लिये सौंप दियाʿ बालक को देखने मात्र से ही शम् अर्थात् सुख शान्ति प्राप्त होती थी इसलिए इन्द्रने उनका शंभवनाथ नाम रखा थाʿ शंभवनाथ अपने दिव्य गुणोस संसार में भगवान कहलाते लगेʿ देव और देवेन्द्र जन्म समय के समस्त उत्सव मनाकर अपने अपने स्थानोंपर चले गयेʿ भगवान शंभवनाथ दोयजकी चन्द्रमा की तरह धीरे-धीरे बढंने लगेʿ वे अपनी बालसुलभ अनर्गल लीलाओंसे माता,पिता,बन्धु, बान्धवोंको हमेशा हर्षित किया करते थेʿ उनके शरीर का रंग सुर्वणके समान पीला थाʿ भगवान अजितनाथ तीस करोड़ वर्ष बाद उनका जन्म हुआ थाʿ इस अन्तराल के समय धर्म के विषय में जो कुछ शिथिलता आ गई थी वह इनके उत्पन्न होते ही धीरे-धीरे विनष्ट हो गईʿ इनकी पूर्ण आयु साठ लाख पूर्वकी थी और शरीर की ऊंचाई चार सौ धनुष प्रमाण थीʿ जन्मसे पन्द्रह लाख पूर्व बीत जानेपर इन्हें राज्य-विभूति प्राप्त हुई थीʿ इन्होंने राज्य पाकर अनेक सामायिक सुधार किये थेʿ समयकी प्रगति देखते हुए आपने-राजनीति को पहलेसे बहुत कुछ परिवर्तित औ परिवर्धित कियाʿ पिता दृढ़रथ ने योग्य कुलीने कन्याओं के साथ इनका विवाह

किया था इसलिये वे अनुरू प भार्याओं के साथ सांसारीक सुख भोगते हुए चवालीस पूर्व और चार पूर्व तक राज्य करते रहे॰ एक दिन महल की छत पर बैठे हुए प्रकृति की सुन्दर शोभा देख रहे थे कि उनकी दृष्टी एक सफेद्द मेघपर पड़ी॰ क्षण एकमें हवाके वेग से वह मेघ विलीन हो गया... कहींका चला गया॰ उसी समय भगवान शंभवनाथ के चरित्र मोहनीयके बन्धन ढीले हो गये थे जिससे वे संसार के विषय भोगों से सहसा विरक्त हो गये॰ वे सोचने लगे संसारकी की सभी वस्तुएं इस मेघ खण्डकी नांई क्षणभंगूर हैं एक दिन मेरा यह दिव्य शरीर नष्ट हो जायेगा॰ मैं जिस स्त्री पुत्रों के मोहमें उलझा हुआ आत्महित की ओ प्रवृत्ती नहीं हो रहा हूं वे एक मेरे साथ न जावेंग॰ इस तरह भगवान शंभवनाथ उदासीन होकर वस्तु का स्वरुप विचार ही रहे थे कि इतनेमें लौकान्तिक देवोंने आकर उनके विचार का खूब समर्थन किया॰ बारह भावनाओं के व्दारा उनकी वैराग्य -

धारा खूब बढ़ा दिया॰ अपना कार्य समाप्तकर लौकान्तिक देव व्रह्मालोक को वापिस चले-गये॰ इधर भगवान जिन पुत्र को राज्य देकर बनमें जानेके लिये तैयार हो गये॰ देव और देवेन्द्रोने आकर इनके तप:कल्याण का उत्सव मनाया॰ तदनन्तर वे सिध्दार्थ नाम की पालकी पर सवार होकर श्रावस्तीके समीपवर्ती सहेतुक बनमें गये॰ वहां उन्होंने माता पिता आदि इष्ट जनोंसे सम्मति लेकर मार्गशीर्ष शुक्ला पौर्णमासी के दिन शालवृक्ष के नीचे एक हजार राजाओंके साथ जिन-दिक्षा ले ली॰ वस्त्रभूषण उतार कर फेंक दिये॰ पंच -मुष्ठियोंसे. केश उखाड़ - डाले और उपवास प्रतिज्ञा ले पूर्व की ओर मुंह कर ध्यान धारण कर लिया॰ उस समय का दृश्य बडा ही प्रभावक था॰ देखने वाले प्रत्येक प्राणीके ह्रदय पर वैराग्य की छाप लगती जाती थी॰ उन्हें जो दीक्षा के समय ही मन:पर्यय ज्ञान हो गया था॰ वही उनकी आत्म-विशुध्दि को प्रत्यक्ष करने के लिये प्रबल प्रमाण था॰

दूसरे दिन उन्होंने आहार के लिये श्रावस्ती नगरी प्रवेश किया॰ उन्होंने देखते ही राजा सुरेन्द्रदत्त ने पड़गाह कर विधि पूर्वक आहार दिया॰ आहार दान से प्रभावित होकर देवोंने सुरेन्द्रदत्त के घर पंचाश्चर्य प्रकट किये थे॰ भगवान शंभवनाथ आहार लेकर ईर्या समितिसे विहार करते हुए पुन: बनको वापिस चले गये और जब तक छद्मस्थ रहे तब तक मौन धारण कर तपस्या करते रहे॰ यद्यपि वे मौन होकर ही उस समय सब जगह विहार करते थे तथापि उनकी सौम्य मूर्तिको देखने के मात्र से ही अनेक भव्य जीव प्रतिबुध्द हो जाते थे॰ इस तरह चौदह वर्ष तक तपस्या करने के बाद उन्हें कार्तिक कृष्ण चर्तुदशी के दिन मगृशिर नक्षत्र के उद्यमें- संध्याके समय केवल ज्ञान प्राप्त हो गया था॰ भवनावासी, व्यन्तर, ज्योतिषी और कल्पवासी इन चारो प्रकार के देवोंने आकर उनके ज्ञान कल्याण का उत्सव किया॰ इन्द्रकी आज्ञासे कुबेरने- समवसरण की रचना की॰ जिसके माध्यम से देव सिंहासन पर अन्तरीक्ष विराजमान होकर उन्होंने- अपनी सुललित दिव्य भाषा में सब को धर्मोपदेश दिया॰ वस्तु का वास्तविक रुप समझाया, संसार स्वरू प बतलाया , चारों गतियोंके दु:ख प्रकट किये और उनसे छुटकर पानेके उपाय बतालए॰

उनके उपदेश प्रभावित होकर असंख्य नर नारियोंन व्रत-अनुष्ठान धारण किये थे ʿ क्रम-क्रमसे-उन्होंने समस्त आर्य क्षेत्रों में विहार कर सार्व-धर्मका प्रचार किया थाʿ

उनके समवसरण में चारू षेण आदि एक सौ पांच गणधर थे, दो हजार एक सौ पचास द्वादशांग के वेत्ता थे, एक लाख उन्तीस हजार तीन सौ शिक्षक थेʿ नौ हजार छह सौ अवधिज्ञानी थे, पन्द्रह हजार केव्रली थे, बारह हजार एक सौ चार मन:पर्यय ज्ञानी थे, उन्नीस हजार आठ सौ विक्रिया ऋध्दि के धारी थे और बाहर हजार वादी थेʿ जिनसे भरा हुआ समवसरण बहुतही भला मालुम होता थाʿ धमार्या आदि तीन लाख बीस हजार आर्यिकाये थी तीन लाख श्रावक, पांच लाख श्राविकाएं, असंख्या देव देवियां और असंख्यात तिर्यच उनके समवसरण की शोभा बढ़ाती थींʿ भगवान् शंभवनाथ अपने दिव्य उपदेश से इन समस्त प्राणियों- को हित का मार्ग बतलाते थेʿ

अन्त में जब आयु का एक महीना बाकी रह गया तब वे विहार बन्द कर सम्मेद शैल की किसी शिखर पर जा विराजमान हुए और हजार मुनियोंके साथ प्रतिमा योग धारण कर- आत्म-धान्य में लीन हो गयेʿ अन्तमें शुक्लध्यान के प्रताप से बाकी बचे हुए चार अघातिया कर्मों का नाश कर चैत्र शुक्ला षष्ठीके दिन सांयकाल के समय मृगशिर नक्षत्र के उदय में- सिध्दिसदन-मोक्ष को प्राप्त हुएʿ देवोंने आकर उनका निर्वाण महोत्सव मनायाʿ

भगवान अभिनन्दननाथ

गुणाभिनन्दादभिनन्दनो भवान दयावधूं शान्ति सखी मशिश्रियतʿ
समाधि तन्त्रस्तदुपोपपत्तये द्वयेन नैर्ग्रन्थ्य गुणेन चायुजतʿ

हे जिनेन्द्र ! सम्यग्दर्शन आदि गुणों का आभिनन्दन करने से अभिनन्दन कहलाने वाले- आपने शान्तिसखी से युक्त दया -रू पी स्त्रीका आश्रय किया था और फिर उस कि सत्कृति के लिये ध्यानैंकमान होते हुए आप द्विविध अन्तरंग वहिरंग रुप निष्परिग्रहतासे युक्त हुए थेʿ

(१) पूर्वभव परिचय

जम्बू द्वीप के पूर्व विदेह क्षेत्र में सीता नदीके दक्षिण तट पर एक मंगलावती नामक देश हैʿ उसमें रत्नसंचय नाम का एक महा मनोहर नगर हैʿ उसमें किसी समय महाबल नामका राजा राज्या करता थाʿ वह बहुती सम्पत्तिशाली थाʿ उसके राज्य में सभी प्रजा सुखी थी, चारों वर्णो के मनुष्य अपने अपने कर्तव्यों का पालन करते थे । महाबल दरअसल में महाबल ही था ʿ उसने अपने बाहूबल से समस्त विरोधी राजाओं के दांत खट्टे कर दिये थेʿ वह सन्धि विग्रह,यान, संस्थान आसन और द्वैधीभावानइन छह गुणोंसे विभूषित थाʿ उसके साम,दाम,दण्ड और भेद ये चार उपाय कभी निष्फल नहीं होते थेʿ वह उत्साह मन्त्र और प्रभाव इन तीन शक्तियों से युक्त था, जिससे वह हरएक सिध्दियों का पात्र बना हुआ थाʿ कहने का मतलब यह है कि उस समय वहां राजा महाबल की बराबरी करने वाला कोई दूसरा राजा नहीं थाʿ

अपनी कान्तिसे देवांगनाओं को भी पराजित करने वाली अनेक नर देवियोंके साथ तरह तरहके सुख भोगते हुए महाबल का बहुतसा समय व्यतीत हो गया ।

एक दिन कारण पाकर उसका चित्त विषय वासनाओं से हट गया जिस से वह अपने- धनपाल नामक पुत्र को राज्य देकर विमलवाहन गुरु के पास दीक्षित हो गया ँ अब मुनिराज महाबल के पास रंच मात्र भी परिग्रह नहीं रहा था । वे शरदी, गर्मी वर्षा, क्षुधा, आदि के दु:ख समता भावोंसे सहने लगे ँ संसार और शरीर के स्वरुप का विचार कर निरन्तर संवेग और वैराग्य गुणकी वृध्दी करने लगे ँ आचार्य विमलवाहन के पास रहकर उन्होंने ग्यारह अंगों का अध्ययन किया तथा दर्शन विशुध्दि आदि सोलह भावनाओंका विशुध्द ह्दय से चिन्तवन किया जिस से उन्हें तीर्थकार नामक महापुण्य प्रकृति का बन्ध हो गया ँ आयुके अन्तमें वे समाधि पूर्वक शरीर छोड़ कर विजय नाम के पहले अनुत्तर में महा ऋध्दिधारी अहमिन्द्र हुए ँ वहां उनकी तेतीस सागर प्रामण आयु थी , एक हाथ बराबर सफेद्र शरीर था, वे तेतीस हजार वर्ष के बाद मानसिक आहार लेते और तेतीस पक्ष में एक बार श्वासोच्छवास लेते थे ँ वहां वे इच्छा मात्र से प्राप्त हुई उत्तम द्रव्योंसे जिनेन्द्र देव की अर्चा करते और स्वेच्छासे मिले हुए देवों के साथ तत्व चर्चा करके मन बहलाते थे ँ यही अहमिन्द्र आगे चल कर भगवान अभिनन्दननाथ होंगे ँ

(२) वर्तमान परिचय

जम्बू द्वीप के भरतक्षेत्र में अयोध्या नामकी नगरी है जो विश्वबन्धु तीर्थकरों के जन्म से महा पवित्र है ँ जिस समय की यह वार्ता है उस समय वहां स्वयम्बर राजा राज्य करते थे उनकी महारानी का नाम सिध्दार्था था ँ स्वयंबर महाराज वीर लक्ष्मी के स्वयंबर पति थे ँ वे बहुत ही विद्वान और पराक्रमी राजा थे ँ कठिनसे कठिन कार्योका वे अपनी बुध्दिबलसे अनायास ही कर डालते थे, जिस से देखने वालों को दांतो तले अंगुली दबानी पड़ती थीं ँ राज दम्पति तरह तरहके सुख भोगते हुए दिन बिताते थे ँ

ऊपर जिस अहमिन्द्र का कथन कर आये उसकी आयु जब विजय विमान में छह माह की बाकी रह गई तबसे राजा स्वयंबर के घर के आंगन में प्रतिदिन रत्नों की वर्षा होने- लगीं ँ साथमें और भी अनेक शुभ शकुन प्रकट हुए जिन्हें देखकर भावी शुभ की प्रतिक्षा करते हुए राजदम्पति बहुत ही हर्षित होते थे ँ इसके अनन्तर महारानी सिध्दार्था ने वैशाख शुक्ल षष्टीके दिन पुनर्वसु नामक नक्षत्र में रात्रिके पिछले प्रहर में सुर कुंजर आदि सोलह स्पप्न देखे और अन्तमें अपने मुख में एक श्वेत वर्ण वाले हाथींको प्रवेश करते हुए देखा ँ सवेरे स्वंयवर महाराज ने उनका फल कहा-प्रिये ! आज तुम्हारे गर्भ में स्वर्ग से चयकर किसी पुण्यात्माने अवतार लिया है नौ माह बाद तुम्हारे तीर्थकार पुत्र होगा ँ जिसके बल,विद्या,वैभव आदिके सामने देव देवेन्द्र अपना माथा धुनेंगे ँ पतिके मुंह से भावी पुत्र का माहत्म्य सुनकर सिध्दार्थ के हर्ष का पारावार नहीं रहा ँ उस समय उसने अपनेआप को समस्त स्त्रियों में सारभूत समझा था ँ गर्भमें स्थित तीर्थकार बालक के पुण्य प्रतापसे देव कुमारियां आ आकर महाराणी की शुश्रूषा करने लगी और चतुर्णिकाय के देवोंने आकर स्वर्गीय वस्त्रभूषणों से खूब सत्कार किया, खूब उत्सव मनाया,खूब भक्ति

प्रदर्शित की ं धीरे-धीर जब गर्भ के दिन पूर्ण हो गये तब रानी सिध्दार्थाने माघ शुक्ल द्वादशी के दिन आदित्य योग और पुनर्वसु नक्षत्र में उत्तम पुत्र उत्पन्न किया ं देवोंने मेरु पर्वत पर ले जाकर रमणीय सलिल से उनका अभिषेक किया ं इन्द्राणीने तरह तरहके आभूषण पहिनाये ं फिर मेरु पर्वतसे वापिस आकर अयोध्यापुरी में अनेक उत्सव मनाये राजान याचकों के लिये मनचाहा दान दिया । इन्द्रने राज-बन्धुओं की सलाह से बालक का अभिन्दन नाम रक्खा । बालक अभिनन्दन अपनी बाल चेष्टाओं से सबके मनको आनन्दित करता था इसलिये- उसका अभिनन्दन नाम सार्थक ही था । जन्मकल्याण का महोत्सव मनाकर इन्द्र वगैरह अपने अपने- स्थानों पर वापिस चले गये ं पर इन्द्रकी आज्ञासे बहुत से देव बालक अभिन्दन कुमार के मनोविनोद के लिये वहीं पर रह गये ं शंभवनाथ के बाद दश लाख करोड़ बीत चुकने पर भगवान् अभिन्दननाथ हुए थे ं उनकी आयु पचास लाख पूर्व की थी, शरीर की ऊंचाई तीन सौ पचास धनुष की थी और रंग सुवर्ण की तरह पीला था, उनके शरीर से सूर्य के समान तेज निकलात था ं वे मूर्तिधारी पुण्य के समान मालूम होते थे ं जब इनकी आयु रे साढे बारह लाख वर्ष बीत गये तब महाराज स्वयंबर ने इन्हें राज्य देकर दीक्षा धारण कर ली ं अभिनन्दन स्वामी ने भी राज्य सिंहासन पर विराजमान होकर साढे छत्तीस लाख पूर्व और आठ पूर्वांग तक राज्य किया ं एक दिन वे मकान की छत पर बैठ कर आकाश की शोभा देख रहे थे ं देखते देखते उनकी दृष्टी एक बादलों के समूह पर पड़ी ं उस समय वह बादलों का समूह आकाश के मध्य भाग में स्थित था । उसका आकार किसी मनोहर नगर के समान था ं भगवान अनिमेष दृष्टीसे उसके सौन्दर्य को देख रहे थे ं पर इतनेमें वायुके प्रबल वेगसे वह बादलों का समूह नष्ट हो गया-कहीं का कहीं चला गया । बस, इसी घटना से उन्हें आत्मज्ञान प्रकट हो गया जिससे उन्होंने राज्यकार्य से मोह छोड़ कर दीक्षा लेने का दृढ़ विचार कर लिया । उसी समय लौकान्तिक देवोंने भी आकर उनके विचारों का समर्थन किया ं चारों निकायोंके देवोंने आकार दीक्षा-कल्याण का उत्सव किया ं अभिनन्दन स्वामी राज्याका भार पुत्रके लिये सौंपकर देव-निर्मित हस्तचित्रा पालकी पर सवार हुए ं देव उस पालकी को उठाकर उग्र नामक उद्यान में ले गये ं वहां उन्होंन माघ शुक्ला द्वादशी के दिन का पुनर्वसु नक्षत्रके उदय में शाम के समय जगद्वन्ध सिध्द परमेष्ठी का नमस्कार कर दीक्षा धारण ली -बाह्य-आभ्यन्तर परिग्रह को छोड़ दिये -और केश उखाड़ कर फेंक दिये ं उनके साथ में और भी हजार राजाओंने दीक्षा धारण की थीं ं उन सब से घिर हुए भगवान अभिनन्दन बहुत शौभायमान होते थे ं उन्होंने दीक्षा लेते समय बेला अर्थात दो दीन का उपवास धारण किया था ं जब तिसरा दिन आया तब वे मध्याह्नसे कुछ समय पहले आहार लेने के लिय अयोध्यापुरी में गये ं उस समय वे आगे की चार हाथ जमिन देखकर चलते थे, किसी से कुछ नहीं कहते, उनकी आकृती सौम्य थी दर्शनीय थीं ं वे उस समय ऐसे मालूम होते थे मानों चचाल चित्रं किलका ज्वनाद्रि-मेरु पर्वत ही चल रहा हो । महाराज इन्द्रदत्तने पडगाह कर उन्हें विधिपूर्वक भोजन दिये जिसे से उनके घर देवोंने पंचाश्चर्य प्रकट लिये ं वहांसे लौट कर अभिनन्दन स्वामी बनमें जा विराजे और कठिन तपस्या करने लगे ं इस तरह अठारह वर्ष तक

छद्मस्थ अवस्था में रहकर विहार किया । एक दिन बेला उपवास धारण कर वे शाल वृक्ष के नीचे विराजमान थे॑ उसी समय उन्होंने शुक्लध्यान के अवलम्बन से क्षपक श्रेणी मांड क्रम-क्रम से आगे बढ़कर दशवें गुणस्थान के अन्तमें मोहनीय कर्म का सर्वथा क्षय कर दिया फिर बढ़ती हुई विशुध्दि से बारहवें गुणस्थानमें पहुंचे । वहां अन्दमर्हुत ठहर कर शुक्ल ध्यान के प्रताप से अवशिष्ट तीन घातिया कर्मोका नाश किया जिससे उन्हें पौष शुक्ल चतुर्दशीक शामके समय पुनर्वसु नक्षत्र में अनन्त चतुष्टय,अनन्त ज्ञान, दर्शन, सुख और वीर्य प्राप्त हो गये॑उस समय सब इन्द्रोंने आकर उनकी पुजा की , ज्ञान कल्याणक का उत्सव किया॑ धनपतिने समवसरण की रचना की जिस के मध्य में सिंहासन पर अधर विराजमान होकर पूर्ण ज्ञानी भगवान् अभिनन्दननाथ ने दिव्य ध्वनि के द्वारा सब को - हित का उपदेश दिया । जीव, अजीव आस्त्रव, बन्ध, संवर निरर्ज, और मोक्ष इन सात तत्वों का विशद व्याख्यान किया । संसार के दुखों का वर्णन कर उससे छूटनेके उपाय बतलाये। उनके उपदेश से प्रभावित होकर अनेक प्राणी धर्म में दीक्षीत हो गये थें वे जो कुछ करते थे वह विशुध्द ह्रदय से कहते थे इसलिये लौंगोंक ह्रदयों पर उसका अच्छा असर पड़ता था॑ आर्य क्षेत्र में जगह जगह घूम कर उन्होंने सर्व-धर्मा का प्रचार किया और संसार-सिन्धु में पडे हुए प्राणियों को हस्तावलंबन दिया । उनके समवसरण में वज्रनाभि को आदि लेकर एक सौ तीन गणधर थे, दो हजार पांच सौ द्वादशांग से पाठी थे, दो लाख तीस हजार पचास शिक्षक थे, नौ हजार आठ सौ अवधिज्ञानी थे, सोलह हजार केवलज्ञानी थे , और ग्यारह हजार वाद -विवाद करने वाले थे, इस तरह सब मिलाकर तीन लाख मुनिराज थे॑ इनके सिवाय मेरुषेणा को आदि लेकर तीन लाख तीस हजार छह सौ आर्यिकाएं थी, तीन लाख श्रावक थे, पाचं लाख श्राविकाएं थीं॑ असंख्यात देव देवियां और थे असंख्यात तिर्यञ्च । अनेक जगह विहार करने के बाद वे आयु के अन्तिम समयमें सम्मेद शिखरपर पहुंचे । वहां से प्रतिमायोग धारण का अचल हौ बैठा गये । उस समय उनका दिव्य ध्वनी वगैरह बाह्य वैभव लुप्त हो गया था । वे हर एक तरह के आत्म ध्यान में लिन हो गये थे । धीरे-धीरे उन्होंने योगो की प्रवृत्ती को भी रोक लिया था जिससे उनके नविन कर्मो का आस्त्रव बिलकुल बन्द हो गया और शुक्लध्यान के प्रताप से सत्ता में स्थित अघाति चतुष्क की पचासी प्रकृतियां धीरे-धीरे -नष्य हो गई । जिससे वे वैसाख शुक्ल षष्ठी के दिन पुनर्वसु नक्षत्र में प्रातःकाल के समय मुक्ति मन्दिर में जा पधारे । देवोंन आकर उनके निर्वाण कल्याणक का महोत्सव किया । आचार्य गुणभद्र लिखते है कि जा पहले विदेह क्षेत्रके रत्नसंचय नगर में महाबल नामके राजा हुए वे अभिन्दन स्वामी तुम सबकी रक्षा करें ।

भगवान सुमतिनाथ

रिपुनृप यम दण्ड : पुण्डरीकिण्यधीशोहरिरिव रतिषेणी वैजयन्ते S हमिन्द्र : ।
सुमित रमित लक्ष्मीस्तीर्थ कृद्यः कृतार्थ सकलगुणसमृध्दो वः स सिध्दी विदध्यात् ।।

- आचार्य गुणभद्र

जो शत्रुरुप राजाओं के लिये यमराज के दण्ड के समान अथवा हरि (इन्द्र) के समान पुण्डरीकिणी नगरी के राजा रतिषेण हुए, फिर वैजयन्त विमान में अहमिन्द्र हुए वे अपार लक्ष्मीके धारक, कृतकृत्य, सब गुणोंसे सम्पन्न भगवान् सुमतीनाथ तीर्थकार तुम सब की सिध्दी करें तुम्हारे मनोरथ पूर्ण करें ।

(१) पूर्वभय परिचय

दूसरे धातकी खण्ड द्वीप में पूर्वमेरु से पूर्वकी ओर विदेह क्षेत्रमें सीता नदी के उत्तर तटपर पुष्कलावती नामक देश है । उसमें पुण्डरीकिणी नगरी है जो अपनी शोभासे पुरन्दपुरी अमरावती को भी जीतती है । किसी समय उसमें रतिषेण नामक राजा राज्य करते थे । महाराज रतिषेणने अपने अतुलकाय बल से जिस तरह बडे बडे शत्रुओं को जीत लिया था उसी तरह अनुपम मनोबलसे काम , क्रोध , लोभ , मद , मात्सर्य और मोह इन छह अन्तरंग शत्रुओंको भी जीत लिया था । वे बड़े ही यशस्वी थे दयालु थे धर्मात्मा थे और थे सच्चे नीतिज्ञ ॰ अनेक तरह के विषय भोगते हुए जब उनकी आयु का बहुभाग व्यतीत हो गया तब उन्हें एक दिन किसी कारण वश संसार से उदासीनता हो गई । ज्योंही उन्हेंाने विवेकरुपी नेत्र से अपनी ओर देखा त्योंही उन्हें बीते हुए जीवन पर बहुत सन्ताप हुआ । वे सोचने लगे -हाय मैंन अपनी विशाल आयु इन विषय सुखोंके भोगने में ही बिता पर दी पर विषय सुख भोगने से ्क्या सुख मिला है ? इसका कोई उत्तर नहीं है॰ मैं आजतक भ्रम वा दु: खके कारणों को ही सुखका कारण मानता रहा हूं । ओह ! इत्यादि विचारकर वे अतिरथ पुत्रके लिये राज्य दे बनमें जाकर कठिन तपस्याएं करने लगे उन्होंने- अर्हन्नन्दन गुरु के पास रहकर ग्यारह अंगो का विधि पूर्वक अध्यन किया तथा दर्शन विशुध्दी अदि सोलह भावनाओं का शुध्द ह्रदयसे चिन्तवन किया जिससे उन्हें तीर्थकार नामक महापुण्य प्रकृति का बन्ध हो गया । मुनिराज रतिषेण आयु के अन्त में सन्यास पूर्वक मर कर वैजन्त विमान में- अहमिन्द्र हुए । वहां उनकी आयु तेतीस सागर वर्षकी थी, शरीर एक हाथ उँचा और रंग सफेद्र था॰ वे तेतीस हजार बाद एक बार मानसिक आहार लेते और तेतीस पक्षमें सुरभित श्वास लेते थे । इस तरह वहां जिन अर्चा और तत्व चर्चाओं से अहमिन्द्र रतिषेण के दिन सुखसे बीतने लगे । यही अहमिन्द्र आगेके भव में कथानायक भगवान् सुमति होंगे॰ अब कुछ वहां का वर्णन सुनिये जहां आगे चलकर उक्त अहमिन्द्र जन्म धारण करेंगे॰

(२) वर्तमान परिचय

पाठकगण जम्बूद्वीप भरत क्षेत्र की जिस अयोध्या से परिचित होते आ रहे है उसीमें किसी समय मेघरथ नाम के राजा राज्य करते थे उनकी महारानी की नाम सुमंगला था । सुमंगला सचमुच मंगला ही थी । महाराज मेघरथ के सर्व मंगल सुमंगलाके ही आधीन थे । ऊपर जिस अहमिन्द्र का कथन कर आये हैं उस की वहां की आयु जब छह माह की बाकी रह गई थी तभीसे महाराज मेघरथ के घरपर देवोंने रत्नों की वर्षा करनी शुरू कर दी थी । श्रावण शुक्ला द्वितीया के दिन मघा नक्षत्र में सुमंगल देवीने पिछले भागमें ऐरावत आदि सोलह स्वप्न देखे और फिर मुंहमे प्रवेश करता हुआ एक हाथी देखा । सवेरा होते

ही उसने प्राणनाथ से स्वप्नों का फल पूछा तब उन्होंने अवधिज्ञान से जानकर कहा कि आज तुम्हारे गर्भ में तीर्थकर बालकने अवतार लिया है -सोलह स्वप्न उसीकी विभूति के पिचायक हैं । पतिके मुख से स्वप्नों का फल सुनकर और भावी पुत्र के सुविशाल वैभव का स्मरण कर के वह बहुत ही सुखी होती थी । उसी दिन देवोंने आकर राजा रानी का खूब यश गाया, खूब उत्सव मनाये । इन्द्रकी आज्ञा से सुरकुमारियां महादेवी सुमंगला की तरह तरह की शुश्रूषा करती थी और प्रमोदमयी वचनों से उसका मन बहलाये रहती थी ।

नौ महीना बाद चैत्र शुक्ल एकादशी के दिन मघा नक्षत्र में महारानीने पुत्र उत्पन्न किया । पुत्र उत्पन्न होते ही तीनों लोंकों में आनन्द छा गया । सबके हृदय आनन्द से उल्लसित हो उठे, एक क्षण के लिये नारकी भी मार काट का दु:ख भूल गये, भवनावासी देवोंके भवनों में अपने आप शंख बज उठे, व्यन्तरोंके मन्दिरों में भेरी की आवाज गूंजने लगी, ज्योतिषियोंके विमानोंमें सिंहनाद हुआ तथा कल्पवासी देवों के विमानों मे घन्टा की आवाज फैल गई । मनुष्य लोक में भी दिशाएं निर्मल हो गई आकाश निर्मेघ हो गया , दक्षिण की शीतल और सुगन्धित वायु धीरे -धीरे बहने लगी, नदी,तालब आदि का पानी स्वच्छ हो गया ।

अथान्तर तीर्थकार के पुण्यसे प्रेरे हुए देव लोग बालक तीर्थकार को सुमेंरु पर्वत पर ले गये । वहां उन्होंने क्षीर-सागर के जलसे उनका अभिषेक किया । अभिषेक के बाद इन्द्राणी ने शरीर पोंछ कर उन्हें बालोचित उत्तम उत्तम आभूषण पहिनाये और इन्द्रने स्तुति की । फिर जय जय शब्द से समस्त आकाश को व्याप्त करते हुए अयोध्या आये और बालक को माता पिताके लिये सौप कर उन्होंने बड़े ठाट वाट से जन्मोंत्सव मनाया । उसी समय इन्द्रने आनन्द नाम का नाटक किया था । पुत्र का अनुपम माहात्म्य देख कर पिता हर्षा से फूले न समाते थे । इन्द्रने महाराज मेघरथ की सम्मति से बालक का नाम सुमति रक्खा । उत्सव समाप्त कर देवलोग अपने अपने स्वर्ग चले गये । बालक सुमतिनाथ दूज के चन्द्रमा की तरह धीरे-धीरे बढ़ाता गया । वह बाल-चन्द्र ज्यों ज्यों बढ़ाता जाता था त्यों त्यों अपनी कलाओं से माता पिता के हर्ष-सागर को बढ़ता जाता था । भगवान् सुमतिनाथ, अभिनन्दन स्वामी के बाद नौ लाख करोड़ सागर बीत जाने पर हुए थे । उनकी आयु चालीस लाख पूर्व की थी जो उसी अन्तारालमें शामिल है। शरीर की ऊंचाई तीन सौ धनुष और कान्ति तपे हुए स्वर्ण की तरह थी । उनका शरीर बहुती सुन्दर था- उनके अंग प्रत्यग्ङसे लावण्य फूट फूट कर निकल रहा था । धीरे धीरे जब उनके कुमारकाल के दश लाख पूर्व व्यतीत हो गये तब महाराज मेघराज उन्हें राज्या-भार सौप कर दीक्षित हो - गये । भगवान् सुमतिनाथ ने राज्य पाकर उसे इतना व्यवस्थित बनाया था कि जिस से उनका कोई भी शत्रु नहीं रहा था । समस्त राजा लोग उनकी आज्ञाओं को मालाओं की तरह मस्तक पर धारण करते थे । उनके राज्यमें हिंसी, झूठ , चोरी व्याभिचार आदि पाप देखने को न मिलते थे । उन्हें हमेशा प्रजा के हित का ख्याल रहता था इसलिये वे कभी ऐसे नियम नहीं बनाते थे जिनसे प्रजा दुखी हो । महाराज

मेघराज दीक्षित होने के पहले ही उनका योग्य कुलीन कन्याओं के साथ पाणिग्रहण (विवाह) करा गये थे । सुमतिनाथ उन नर-देवियों के साथ अनेक सुख भोगते हुए अपना समय व्यतीत करते थे । इस तरह राज्य करते हुए जब उनके उन्नीस लाख पूर्व और बारह पूर्वाग्ङ बीत चुके तब किसी दीन कारण पाकर उनका चित्त विषय वासनाओं से विरक्त हो गया जिस से उन्हें संसार के भोग नीरस और दु:ख प्रद मालूम होने लगे । ज्योंही उन्होंने अपने अतीत जीवन पर दृष्टी डाली त्योंही उनके शरीर में रोमांच खडे हो गये । उन्होंने सोचा हाय मैंने एक मूर्ख की तरह इतनी विशाल आयु व्यर्थ गंवा दी हित का मार्ग बतलाऊं, उनका भला करूं -यह जो मैं बचपन में सोचा करता था वह सब इस यौवन और राज्य सुख के प्रवाह में प्रवाहित हो गया । जैसे सैकड़ो नदियों का पान करते हुए भी समुद्र की तृप्ति नहीं होती वैसे इन विषय सुखों को भागेत हुए भी प्राणियों को तृप्ति नहीं होती । ये विषयाभिलाषाएं मनुष्य को आत्म हित की कदम नहीं बढ़ाने देतीं । इसलिये अब मैं इन विषय वासनाओं को जलांजलि देकर आत्म हित की ओर प्रवृत्ति करता हूं ।

इधर भगवान् सुमतिनाथ विरक्त ह्रदय से विचार कर रहे थे उधर आसन कांपने से लौकान्तिक देवोंको इनके वैराग्य का ज्ञान हो गया था जिस से वे शीघ्र ही इनके पास आये और अपनी विरक्त वाणी से इनके वैराग्य को बढ़ाने लगे । जब लोकान्तिक देवोंने देखा कि अब इनका ह्रदय पूर्ण रू प से विरक्त हो चुका है तब वे अपनी अपनी जगह पर वापिस चले गये और उनके स्थान पर असंख्य देव लोग आ गये । उन्होंने आकर वैराग्य महोत्सव मनाना प्रारभ्भ कर दिया । पहिले जिन देवीकी संगीत, नृत्य तथा अन्य चेष्टाएं राग बढ़ाने वाली होती थी आज उन्हीं देवियों की समस्त चेष्टाएं वैराग्य बढ़ा रहीं थी ।

भगवान् सुमतिनाथ पुत्र के लिये राज्य देकर देव -निर्मित अभया पालकी पर बैठ गये । देव लोग अभया को अयोध्याके समीपवर्ती सहेतुक नामक बव में ले गये वहां उन्होंने नरसुर की साक्षी में जगद्वन्द्य सिध्द परमेष्ठी को नमस्कार कर बैसाख शुक्ला नवमी के दिन मध्यान्ह के समय मघा नक्षत्र में एक हजार राजाओं के साथ दिगम्बरी दीक्षा धारण कर । दीक्षा धारण करते समय हो वे तेल-तीन दिन के उपवास की प्रतिज्ञा कर चुके थे इसलिये लगातार तीन दिन तक एक आसन से ध्यानमग्न होकर बैठे रहे । ध्यानके प्रताप से उनकी विशुध्दता उत्तरोत्तर बढ़ती जाती थी इसलिये उन्हें दीक्षा लेने के बाद ही चौथा मन:पर्यय ज्ञान प्राप्त हो गया था । जब तीन दिन समाप्त हुए तब वे मध्यान के आहार के लिये सौमनस नगर में गये । वहां उन्हें घ्द्युम्न द्युति ङ राजने पडगाह कर योग्य (समयानुकूल) आहार दिया । पात्रदान के प्रभाव से राजा द्युम्नद्युति के घर देवोंने पंचाश्चर्य प्रकट किये । भगवान् सुमतिनाथ आहार लेकर बनको वापिस लौट आये फिर आत्म-ध्यानमें लीन हो गये ।

इस तरह कुछ कुछ दिनोंके अन्तराल से आहार ले कठिन तपश्यर्या करते हुए जब बीस वर्ष बीत गये तब उन्हें प्रियंगु वृक्षके नीचे शुक्लध्यान के प्रतापसे घातिया कर्मोका नाश हो जाने पर चैत्र सुदी एकादशी के दिन मघा नक्षत्रमें सायंकाल के समय लोक-अलोक का प्रकाशित करने वाला केवलज्ञान

प्राप्त हुआ । देव, देवेन्द्रोंवे आकर भगवान् के ज्ञानकल्याण का उत्सव मनाया' अलकाधिपति कुवेरने इन्द्र की आज्ञा पाते ही समवसरण की रचना की 'उसके मध्य में सिंहासन पर अचल रू पसे विराजमान होकर-केवली सुमतिनाथ ने दिव्य ध्वनि के द्वारा उपस्थित जनसमूह को धर्म, अधर्म का स्वरुप बतलाया जीव, पुद्‌गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल इन छह द्रव्योंके स्वरुपका व्याख्यान किया । भगवान के मुखरविन्द से वस्तु का स्वरुप समझकर वहां बैठी हुई जनता के मुह उस तरह हर्षित हो रहे थे जिस तरह कि सूर्यकी किरणों के स्पर्श कमल हर्षित हो जाते हैं । व्याख्यान समाप्त होते ही इन्द्रने मधुर शब्दोंमें उनकी स्तुति की और आर्यक्षेत्रों में विहार करनेकी प्रार्थना कि । उन्हेंने आवश्यकता नुसार आर्य क्षेत्रों में विहार समीचीन धर्म का खूब प्रचार किया ।

भगवानका विहार उनकी इच्छा पूर्वकी नहीं होता था । क्योंकि मोहनीय कर्म का अभाव होने से उनकी हर एक प्रकार की इच्छाओंका अभाव हो गया था । जिस तरफ भव्य जीवोंकी विशेष पुण्य का उदय होता था उस तरफ मेघोंकी तरह उनका स्वाभाविक विहार हो जाता था । उनके उपदेश से प्रभावित होकर अनेक नर-नारी उनकी शिष्य दीक्षामें दिक्षीत हो जाते थे । आचार्य गुणभद्राजीने लिखा है कि उनके समवसरण में अमर आदि एक सौ सोलह गणधर थे , दो लाख चौअन हजार तीन सौ पचास शिक्षक थे , ग्यारह हजार अवधिज्ञानी थे , ग्याहर हजार अवधिज्ञानी थे, तेरह हजार केवलज्ञानी थे , दश हजार चार सौ मन:पर्यय ज्ञानी थे, अठारह हजार चार सौ विक्रिया ऋध्दि के धारक थे, दस हजार चार पचास वादी थे । इस तरह सब मिलाकर तीन लाख बीस हजार मुनि थे । अनन्तमती आदि तीन लाख तीस हजार आर्यिकाएं थीं , तीन लाख श्रावक और पांच लाख श्राविकाएं थी । इनके सिवाय असंख्यात देव देवियां और संख्यात तिर्यंच थे ।

जब उनकी आयु एक माह की बाकी रह गई तब वे सम्मेद शैल पर आये और वहीं योग निरोध कर विराजमान हो गये । वहां उन्होंने शुक्ल ध्यान के द्वारा अधाति चतुष्टय का क्षय कर चैत्र सुदी एकादशी के दिन मघा नक्षत्रमें शामके समय मुक्ति-मन्दिर में प्रवेश किया । देवोंने सिध्द क्षेत्र सम्मेदशिखर पर आकर उनकी पूजा की और मोक्ष कल्याणक की उत्सव किया ।

भगवान पद्‌मप्रभ

किं सेव्यं क्रम युग्म मब्जविजया दस्यैव लक्ष्मास्पदं
किं श्रव्यं सकल प्रतीति जनना दस्यैव सत्यं वचः ।
किं धयेयं गुणसंतितश्च्युत मलस्यास्यैव काष्ठाश्रया
दित्युक्त स्तुति गोचर:स भगवानपद्मप्रभ : पातुवः ।।

सेवा किसकी करनी चाहिये ? कमलको जीत लेनेसे लक्ष्मी के स्थानभूत भगवान्‌के चरण युबल की । सुनना क्या चाहिये ? सबको विश्वास उत्पन्न करनेसे इन्हीं प्रद्‌मप्रभ भगवान् के सत्य वचन । ध्यान

किसका करना चाहिये ? अन्तरहित होनेके कारण, निर्दोष इन्हीं पद्मप्रभ महाराज के गुण समूह । इस प्रकारकी स्तुतिके विषयभूत भगवान् पद्मप्रभ तुम सबकी रक्षा करे ।

(१) पूर्वभव परिचय

दूसरे धातकी खण्डव्दीप के पूर्व विदेह क्षेत्रमें सीता नदीके दाहिने किनारेपर एक वत्स नाम का देश है । उसके सुसीमा नगर में किसी समय अपराजित नामका राजा राज्य करता थां सचमुच में राजाका जैसा नाम था वैसा ही उसका बल था । वह कभी शत्रुओंसे पराजित नहीं हुआ । उसकी भुजाओंमें अप्रतिम बल था जिस से उसके सामने रणक्षेत्र में कोई खड़ा भी न हो पाता था । उसके पास जो असंख्य सेना थी वह सिर्फ प्रदर्शन के लिए ही थी । क्योंकि शत्रु लोग उसका प्रताप न सहकर दूसरे ही भाग जाते थे । वह हमेशा अपनी प्रजाकी भलाई में संलग्न रहता था । राजा अपराजित ने दान दे दे कर दरिद्रोंको लखपति बना दिया था । उसकी स्त्रियां अपने अनुपम रू प से सुर सुन्दरियों को भी पराजित करने वालीं थीं । उन सबके साथ संसारिक सुख भोगता हुआ वह चिरकाल तक पृथिवीका पालन करता रहा ।

एक दिन किसी कारण से उसका चित्त विषय वासनाओं से हट गया था इसलिये वह सुमित्रा नामक पुत्रके लिये राज्य दे बनमें जाकर विहितास्त्रव आचार्य के पास दीक्षित हो गया । उसने आचार्य के पास रहकर खूब अध्ययन किया औ कठिन तपस्याओंसे अपनी आत्मा को बहुत कुछ निर्मल बना लिया । उन्हीं के पास में रहते हुए उसने दर्शन विशुध्दि, विनय सम्पन्नता आदि सोलह भावनाओंका चिन्तवन कर तीर्थकर नामक पुण्य प्रकृति का बन्ध कर लिया था । जब उसकी आयु समाप्त होने को आई तब वह समस्त वाह्य पदार्थोसे मोह हटाकर शुध्द आत्मा के ध्यान में लीन हो गया । जिस में मरकर नवमें ग्रैवेयक के प्रीतिकर विमान में. ॠध्दिधारी अहमिन्द्र हुआ । वहां पर उसकी आयु इकतीस सागर की थी, शरीर दो हाथ ऊंचा था, लेश्या शरीरका रंग सफेद था । वह इकतीस हजार वर्ष बाद मानसिक आहार लेता था और इकतीस पक्ष में वह एक बार सुगन्धित श्वास ग्रहण करता था । उसे जन्मसे ही अवधिज्ञान प्राप्त था जिससे वह यही अहमिन्द्र ग्रैवेयक के सुक बोगकर भरतक्षेत्र में पद्मप्रभ नाम का तीर्थकर होगा । ग्रैवेयक से चयकर वह जहां उत्पन्न होगा अब वहांका हाल सुनिये ।

(२) वर्तमान परिचय

इस जम्बूव्दीप के भरतक्षेत्र की कौशाम्बी नगरीमें बहुत समय से इक्ष्वाकु वंशीय राजाओं का राज्य चला आ रहा था । कालक्रमयसे उस समय वहां धारणराजा राज्य करते थे । उनकी स्त्रीका नाम सुसीमा था । सुसीमा सब गुणोंकी अन्तिम सीमा- (अवधि) था । उसमें सभी गुण प्रकर्षता को प्राप्त थे ।

जब उक्त अहमिन्द्र की आयु वहांपर सिर्फ छह माहकी बाकी रह गई थी तभी से महाराजा धारण के घरपर प्रतिदिन आकाशसे करोंडों रत्न वरसने लगे । रत्नोंकी वर्षा देखकर कुछ भला होनेवाला है यह सोचकर राजा अपने मनमें अत्यन्त हर्षित होते थे । महारानी सुसीमाने माघ कृष्णा षष्ठी के दिन चित्र नक्षत्र में स्वप्न देखने के बाद अपने मुंहमें प्रवेश करते हुए एक हाथी को देखा । पूछनेपर राजाने रानी के

लिये स्वप्नों का फल बतलाते हुए कहा कि च आज रात्रि के पिछले पहरमें तुम्हारे गर्भ में तीर्थंकर बालक ने प्रवेश किया है । ये स्वप्न उसी के अभ्युदय के सूचक है छ । पति के मुख से भावी मुख का प्रभाव सुनकर महारानी बहुत ही प्रसन्न हुई । उसी दिन सवेरा होते ही देवोंने आकर महाराज और महारानीका खूब सत्कार किया तथा भगवान पद्मप्रभ के गर्भ कल्याणक का उत्सव किया

नौ माह बाद कार्तिक कृष्णा त्रयोदशीके दिन मघा नक्षत्रमें माता सुसीमाने बालक उत्पन्न किया उसी समय देवोंने बालकको मेरू पर्वत पर ले जाकर क्षीर-सागर के जल से उसका महाभिषेक किया और अनेक तरहसे स्तुति कर माता पिता को सौंप गये । इन्द्रने महाराज के घर पर आनन्द नाटक किया तथा अनेक कौतुहलोंको उत्पन्न करनेवाले ताण्डव नृत्य से सब दर्शकों के मन को हर्षित किया ।

बालक के शरीर की प्रभा (कान्ति) पद्म (कमल) के समान थी, इसलिये इन्द्रने उसका नाम पम्दप्रभ रक्खा था । भगवान् पद्मप्रभ बाल इन्दु के समान प्रतिदिन बढ़ने लगे । उनकी बाल लीलाएं देख देख कर माता सुसीमा का हदय मारे आनन्दसे फूल उठता था । उन्हें मति श्रुति और अवधि, ये तीन ज्ञान तो जन्मसे ही थे, पर वे जैसे वढ़ते जाते थे, वैसे वैसे उनमें अनेक गुण अपना निवास करतें जाते थे ।

सुमतिनाथ के मोक्ष जानेके बाद नब्बे हजार करोड़ सागर बीत जाने पर इनका जन्म हुआ था । इनकी आयु भी इसी अन्तराल में शामिल है । इनकी कुल आयु तीस लाख पूर्व की थी, दो सौ पचास धनुष ऊंचा शरीर था । जब आयुका चौथाई भाग अर्थात् साढ़े सात लाख पूर्व वर्ष बीत गये, तब महाराज धारण उन्हें राज्य देकर आत्म-कल्याण की ओर प्रवृत्त हो गये । भगवान् प्रद्मप्रभ भी राज्य पाकर नीतिपूर्वक उसका पालन करने लगे । उनके राज्य में प्रजा को ईति - भीतिका भय नहीं था । ब्राह्मण आदि वर्ण अपने अपने कार्यो में संलग्न रहते थे, इसलिये ुस समय लोगों में परस्पर झगड़ा नहीं हातो था । उन्होंने अपने गुणों से प्रजाको इतना प्रसन्न कर दिया था ,जिससे वह धीरे धीरे महाराज धारण को भी भूल गई थी । सुन्दरी सुशीला कन्याओं के साथ उनकी शादी हुई थी इनके साथ मनोरम स्थानों में तरह तरह क्रीडाएं करते हुए वे यैावनके रसीले समय को आनन्दसे बिताते थे । वे धर्म अर्थ और काम का समान रुपसे पालन करते थे। इस तरह इन्द्रकी तरह विशाल राज्य का उपभोग करते हुए जब उनकी आयु का बहु भाग व्यतीत हो गया और सोलह पूर्वाड्. कम एक लाख पूर्व की बाकी रह गई, तब वह एक दिन दरवाजे पर बंधे हुए हाथीके पूर्व भाव सुनकर प्रतिबुध्द हो गये । उसी समय उन्हें पूर्व भवों का ज्ञान हो गया, जिससे उनके अन्तरंग नेत्र खुल गये । उन्होंने सोचा कि मैं जिन पदार्थोको अपना समझ उनमें अनुराग कर रहा हूं वे किसी भी तरह मेरे नही हो सकते, क्योकी मै सचेतन जीव द्रव्य हूँ और ये पर पदार्थ अचेतन (जड़) पद्गल रुप है । एक द्रव्य का दूसरे रुप परिणमन त्रिकाल भी नहीं हों सकता ।खेद है कि मैने इतनी विशाल आयु इन्हीं भोग विलासोंमे बिता दी, आत्म कल्याण की कुछ भी चिन्ता नहीं की । इसी तरह ये संसार के समस्त प्राणी विषयभिलाषा रू प दावानल में झुलस रहे है । उनकी

इच्छाएं निरन्तर विषयों की और बढ़ रहीं है और इच्छानुसार विषयों की प्राप्ति नहीं होने से व्याकुल होते हैं । ओह रे ! सब चाहते तो सुख हैं पर दु:ख के कारणोंका संचय करते है । अब जैसे भी बनें वैसे आत्महित कर इनको भी हित का मार्ग बतलाना चाहिए - इधर भगवान् पद्मप्रभ हृदय में ऐसा चिंन्तवन कर रहे थे उधर लौकान्तिक देव आकाश से उतर कर उनके पास आये और बारह भावनाओंका वर्णन तथा अन्य समयोपयोगी सुभाषितों से उनका वैराग्य बढ़ाने लगे । जब भगवान् का वैराग्य पराकाष्ठा पर पहुंच गया तब लौकान्तिक देव अपना कर्तव्य पूर्ण हुआ समझकर अपने अपने स्थानों पर चले गये । उसी समय दूसरे देवोंने आकर तप:कल्याणक का उत्सव मनाना शुरू कर दिया ।

भगवान् पद्मप्रभ पुत्र के लिये राज्य सौंपकर निर्वृति नामक पालकीपर चढ़ मनोहर नाम के बन में गये । वहां उन्होंने देव, मनुष्य और आत्मा की साक्षी पूर्वक कार्तिक कृष्ण त्रयोदशीके दिन शामके समय चित्र नक्षत्र में एक हजार राजाओंके साथ जैनेश्वरी दीक्षा धारण कर ली । उन्हें दीक्षा के समय ही मन:पर्यय ज्ञान हो गया था । दो दिनोंके बाद वे आहार लेने के लिये वर्ध्दमानपुर नाम के नगर में गये सो वहां महाराज सोमदत्त ने पड़गाहकर उन्हें भक्तिपूर्वक आहार दिया । पात्रदान के प्रभाव से देवोंने सोमदत्तके घर पर पंचाश्चर्य प्रकट किये थे । सो ठीक है - जो पात्रदान स्वर्ग मौक्ष का कारण है उससे पंचाश्चर्यो के प्रकट होने में क्या आश्चर्य है ।

भगवान् पद्मप्रभ आहार लेकर पुन: बनमें लौट आये और आत्मध्यानमें लीन हो गये । इस तरह, दिन दो दिन, चार दिनके अन्तरसे भोजन सेकर तपस्याएं करते हुए उन्होंने छद्मस्थ अवस्था के छ: माह मौनपूर्वक बिताये ।

फिर क्षपक श्रेणी चढ़कर शुक्ल ध्यानसे धातिया कर्मो का नाश किया, जिससे उन्हें चैत्रा शुक्ला पौर्णमासी के दिन दोपहर के समय चित्रा नक्षत्र में केवलज्ञान प्राप्त हुआ । इन्द्रोंने आकर ज्ञान-कल्याणक का उत्सव मनाया । कुवेरने पूर्व की तरह समवसरण धर्म सभाकी रचना कीं उसके मध्यमें विराजमान होकर उन्होंमे अपने दिव्य उपदेशसे सबको संतुष्ट किया । जब वे बोलते- थे, तब ऐसा मालूम होता था मानो कानों में अमृतकी वर्षा हो रही है । जीव अजीव आदि तत्वोंका वर्णन करते हुए जव उन्होंने संसार के दु:खों का वर्णन किया तब प्रत्येक श्रोताके शरीर में रोंगटे खडे हो गये थे । उस समय कितने ही मनुष्य गृह परित्याग कर मुनि हो गये थे- और कितने ही श्रावकों के व्रतों में दीक्षित हुए थे ।

इन्द्रकी प्रार्थनासुनकर उन्होंने प्राय: समस्त आर्य क्षेत्रों में विहार किया जिससे सब जगह जैन धर्मा का प्रचार खूब बढं गया था । वे जहां भी जाते थे वहींपर अनेक मनुष्य दीक्षित होकर उनके संघमें मिलते जाते थे, इसलिए अन्तमें उनके समवसरण में धर्मात्मा ओंकी संख्या बहुत बढ़ गई थी । आचार्य गुणभद्रने लिखा है कि उनके समवसरण में बज्र, चामर अदि एक सौ दश गणधर ते, दो हजार तीन सौ व्दादशांगके वेत्ता थे,दो लाख उनहत्तर उपाध्याय शिक्षित थे, दश हजार अवधीज्ञानी थे ,बारह हजार केवल ज्ञानी थे दश हजार तीन सौ मन:पर्यय ज्ञानी थे, सोलह हजार आठ सो विक्रिया ॠध्दि के धारी थे और नौ

हजार छः सौ उत्तरवादी थे । इस तरह सब मिलाकर तीन लाख तीस हजार मुनिराज थें रतिषेणाको आदि लेकर चार लाख वीस हजार अर्यिकाएं थी ।, तीन लाख श्रावक थे, पांच लाख श्राविकाएं थीं, असंख्य देव देवियां और असंख्यात तिर्यंच थे । भगवान् पद्मप्रभ अन्तमें सम्मेंद शिखरपर पहुंचे . वहां उन्होंने एक हजार मुनियोंके साथ प्रतिमा योग धारण किया ओर समस्त योंगों की प्रवृत्ति को रोककर शुध्द आत्मा के स्वरू प का ध्यान किया । उस समय दिव्य ध्वनि बिहार वगैरह सब बन्द हो गया था । इस तरह एक महिने तक प्रतिमा योग धारण करनेके बाद वे फाल्गुन कृष्ण चतुर्थीके दिन चित्रा नक्षत्र में शाम के समय शुक्ल ध्यानके प्रताप से अघातिया कर्मोका क्षय कर मोक्ष स्थान को प्राप्त हुए । देवोंने आकर उनके निर्वाण स्थानकी पूजा की । भगवान पद्मप्रभ के कमल का चिन्ह था ।

भगवान सुपार्श्वनाथ

स्वास्थं यदात्यन्तिक मेषपुंसां स्वार्थो न भाग: परिंगुरात्मा ।
तृषोनुषंगान्नच ताप शान्ति रितीद्माख्यद् भगवान सुपार्श्व : ।।

आत्मा का स्वास्थ वही है जिसका फिर अन्त न हो, विनाश न हो । पंचेन्द्रियों का भाग आत्मा का स्वार्थ नहीं है, क्योकि वह भंगुर है, नश्वर है और तृष्णा का अनुषंग संसर्ग होनेका कारण उस से सन्ताप की शान्ति नहीं होती, ऐसा भगवान सुपार्श्वनाथ ने कहा है ।

(१) पूर्वभव परिचय

धातकी खण्ड व्दीप के पूर्व विदेह क्षेत्र में सीता नदी के उत्तर किनारे पर सुकच्छ देश है . उसके क्षेमपुर नगर में किसी समय नन्दिषेण राजा राज्य करता थां । वह राजा बहुत ही विव्दान एवं चतुर था । उसने अपनी चतुराई से अजय शत्रुओंको भी वश में कर लिया था । उसका बाहुबल भी अपार था । वह रणक्षेत्र में नि:शंक होकर गरज ताथा कि देव, दानव विद्याधर नरवीर जिस में शक्ति हो वह मेरे सामने आवे । इसकी स्त्रियां अपनी रू प राशि से स्वर्गीय सुन्दरियों को भी लज्जित करती थीं । वह उनके साथ अनेक तरह के श्रृड्गार सुख भोगता हुआ अपने यौवन को सफल बनाया करता था । यह सब होते हुए भी वह धर्म कार्यो में हमेशा सुदृढ़ चित्त रहता था, इसलिये उस के कोई भी कार्य ऐसे नहीं होते ते जो धार्मिक नियमों के विरू ध्द हों । कहने का मतलब यह है कि वह राजा - धर्म अर्थ और काम का समान रू पसे पालन करता था । राज्य करते करते जब बहुत समय निकल गया तब एक दिन उसे सहसा वैराग्य उत्पन्न हो गया जिससे उसे समस्त भोग काले भुजंग की तरह मालूम होने लगे । उसने अपने विशाल राज्य को विस्तृत कारागार समझा । उसी समय उसका स्त्री - पुत्र आदिसे ममत्व छूट गया । उसने सोचा कि यह जीव अरहटकी घडी के समान हमेशा ही चारों गतियोंमें घूमता रहता है । जो आज देव है वह कल तिर्यंच हो सकता है । जो आज राज्य - सिंहासन पर बैठकर मनुष्यों पर शासन कर रह है वही कल मुट्ठी भर अन्न के लिये घर घर भटक सकता है । औह ! यह सब होते हुए भी मैंने अभी तक इस संसार से छुटकारा पाने के लिये कोई सदृढ़ कार्य नहीं किया । अब में शीघ्र मोक्ष प्राप्तीके लिये प्रयत्न

करूं गा । इत्यादि विचार कर उसने धनपति नामक पुत्र को राज्य सिंहासन पर बैठा दिया और स्वयं बनमें जाकर अर्हन्नन्दन मुनिराज के पास जिन-दीक्षा ले ली । दीक्षित होने के बाद उसके पास कुछ भी परिग्रह नहीं रहा गया था । दिशाएं ही उसके वस्त्र थे, आकाश मकान था, पथरीली पृथ्वी शय्या थी, जंगलके हरिण आदि जन्तु उसके बन्धु थे, रातमें असंख्य तारे और चन्द्रमा ही उसके दीपक थे । वह सरदी, गरमी, और वर्षाके दु:ख बड़ी शान्तिसे सह लेता था । क्षुधा, तृषा आदि परीषहोंका सहना अब उसके लिये कोई बड़ी बात नहीं थी । उसने आचार्य अर्हन्नन्दन के पास रहकर अंगोंका अध्ययन किया तथा दर्शन विशुध्दि आदि सोलह कारण भावनाओं का चिन्तवन किया, जिस से उसके जगतमें धार्मिक क्रान्ति मचा देनेवाली तीर्थकर नामक महापुण्य प्रकृतिका बन्ध हो गया । इस तरह उसने बहुत दिनों तक तपस्या कर खोटे कर्मो का आना (आस्त्रव) बन्द कर दिया और शुभ कर्मो का आना प्रारभ्भ कराया । आयुके अन्त में वह समाधिपूर्वक शरीर छोड़कर वह मध्यम ग्रैवेयक के सुभद्र विमानमें जाकर अहमिन्द्र हुआ । वहां उसकी आयु सत्ताईस सागर प्रमाण थी, शरीर की उंचाई दो हाथ की थी, लेश्या शुक्ल थी । वह सत्ताईस हजार वर्ष बीत जाने पर एक बार मानसिक आहार ग्रहण करता था । और सत्ताईस पक्ष बाद एक बार सुगन्धित श्वास लेता था । वहां वह इच्छा मात्रसे प्राप्त हुई उत्तम द्रव्योंसे जिनेन्द्र देवकी प्रतिमाओंकी पूजा करता और स्वयं मिले हुए देवोंसे जिनेन्द्र देवकी प्रतिमाओंकी पूजा करता और स्वंय मिले हुए देवोंके साथ तरह तरह ही तत्व चर्चाएं करता था । जो कहा जाता है कि सुखमें जाता हुआ काल मालूम नहीं होता वह बिलकुल सत्य है । अहमिन्द्र को अपनी बीतती हुई आयु का पता नहीं चला । जब सिर्फ छह माह की आयु बाकी रह गई तब उसे मणिमाला आदि वस्तुओं पर कुछ फीकापन दिखा । जिससे निश्चय कर लिया कि अब मुजे यहां से बहुत जल्दी कूचकर नरलोंकमें जाना होगा । उसे उतनी विशाल आयु बीत जाने पर आर्श्चय हुआ . उसने सोचा कि मेंने अपना समस्त जीवन यों ही बिता दिया आत्म-कल्याण की और कुछ भी प्रयत्न नहीं किया, इत्यादिं विचार कर उसने अधिक रू प से जिन अर्चा आदि कार्य करना शुरू कर दिये । यह अहमिन्द्र ही अग्रिम भवमें भगवान् सुपार्श्वनाथ होगा । अब जहां उत्पन्न होगा वहां का हाल सुनिये ।

(२) वर्तमान परिचय

जम्बूव्दीप के भरत क्षेत्रमें एक काशी देश है । उसमें गंगा के तटपर एका वाराणसी (बनारस) नाम की नगरी है । उस समय उस में सुप्रतिष्ठीत नामक महाराजा राज्य करते थे । उनकी महारानी का नाम पृथ्वीसेना था । दोनों दम्पति सुखसे रहते थे । उनके शरीरमें न कोई रोग था, न किसी प्रतिव्दन्दि की चिन्ता ही थीं पाठक उपर जिस अहमिन्द्रसे परिचित हो आये हैं, उसकी आयु जब वहां सिर्फ छ: माहकी बाकी रह गई थी तभीसे यहां महाराज सुप्रतिष्ठित के घर पर देवोंने रत्नोकी वर्षा करनी शुरू कर दी थी । कुछ समय बाद भादों सुदी छठके दिन विशाखा नक्षत्र में महारानी पृथ्वीसेना ने रात्रि के पिछले भागमें हाथी वृषभ आदि सोलह स्वप्न देखे तथा अन्तमें मुंह में प्रवेश करता हुआ एक सुरम्य हाथी देखा ।

अर्थात् उसी समय वह अहमिन्द्र देव पर्याय छोड़कर माता पृथ्वीसेना के गर्भ में आया। सुबह होते ही जब महारानी ने- पतिदेवने स्वप्नों का फल पूछा. तब उन्होंने हर्ष से पुलकित बदन होत हुए कहाकि प्रिये आज तुम्हारा स्त्री जीवन सफल हुआ और मेरा भी गृहस्थ जीवन निष्फल नहीं गया । आज तुम्हारे गर्भ में तीर्थकर पुत्रने अवतार लिया है । यह कहकर उन्होंने रानी के लिये तीर्थंकर के अगण्य पुण्यकी महिमा बतलाई । पतिदेव के मुंहसेअपने भावी पुत्रकी महिमा सुनकर महारानीके हर्षका पार नहीं रहा। उस समय देव-देवियोंने आकर सुप्रतिष्ठित महाराज और पृथ्वीसेना महारानी का खूब सत्कार किया । स्वर्ग से साथ में लाये हुए वस्त्राभूषणों से उन्हें अलंकृत किया तथा अनेक इन्द्रकी आज्ञासे अनेक देव कुमारियां माता की सेवा. करती थी । जब क्रम-क्रमसे गर्भ - कालके दिन पूर्ण हो गये तब पृथ्वीसेनाने ज्येष्ठ शुक्ला व्दादशीके दिन अहमिन्द्र नामके शुभ योगमें पुत्र रत्न उत्पन्न किया । पुत्रकी कांतिसे समस्त प्रसूति - गृह प्रकाशित हो गया था । इसलिए देवियोंने - जो दीपमाला जला रखी थी, उसका सिर्फ मंगल शुभाचार मात्र ही प्रयोजन रह गया था । जन्म होते ही समस्त देव असंख्य देव परिवारके साथ बनारस आये और वहांसे बाल तीर्थकरको लेकर मेरू पर्वत पर गये । वहां उन्होंने पाण्डुक बनमें पाण्डुक-शिला पर विराजमान कर जिन बालकका क्षीर-सागरके जलसे महाभिषेक किया । वहीं गद्य पद्यमयी भाषासे उनकी स्तुति की । अनन्तर वहांसे वापिस आकर उन्होंने जिन बालकको माताकी गोदमें दे दिया । बालकका मुखचन्द्र देखकर माता पृश्वीसेना का आनन्द-सागर लहराने लगा । महाराज सुप्रतिष्ठितकी सलाहसे-इन्द्रने बालक का नाम सुपार्श्व रक्खा . उसी समय इन्द्रने अपने ताण्डव नृत्यसे उपस्थिक जनता को अत्यन्त आनन्दित किया था । जन्मोत्सवके उपलक्ष्यमें बाराणसी पुरी की जो सजावट की गई थी उसके समने पुरन्दरपुरी (अमरावती) बहुत फीकी मालूम होती थी । उत्सव मनाकर देव लोग अपने अपने स्थानों पर वापिस चले गये । पर इन्द्रकी आज्ञासे कुद देव बालक का रू प धारणकर हमेशा भगवान् सुपार्श्वनाथके पास रहते थे. जो कि उन्हें तरह तरहकी चेष्टाओंसे अनन्दित करते रहते थे । महाराज सुप्रतिष्ठितके घर बालक सुपार्श्वनाखते लालन पालनमें कोई कमी नहीं थी, फिर भी इन्द्र स्वर्गसे मनो-विनोदके लिये कल्पवृक्षके फूलों की मालाएं मनोहर आभूषण और अनोखे खिलौने आदि भेजा करता था । बालक सुपार्श्वनाथ भी दुजके चन्द्रमाकी तरह बढ़ने लगे । मुंह पर हमेशा मन्द मुसकान रहती थी । धीरे धीरे समय बीतता गया । भगवान् सुपार्श्वनाथ बाल्य अवस्था पार कर कुमार अवस्थामें पहुंचे और फिर कुमार अवस्था भी पार कर यौवन अवस्थामें पहुंचे । छठवें तीर्थकर भगवान पद्मप्रभके मोक्ष जानेके बाद नौ हजार करोड़ सागर बीत जाने पर श्री सुपार्श्वनाथ हुए थे । उनकी आयु बीस लाख पूर्व की थी और शरीरकी उंचाई दो सौ धनुष की थी । वे अपनी कान्तिसे चन्द्रमाको भी लज्जित करते थे । जनमसे पांच लाख पूर्व बीत जाने पर उन्हें राज्य मिला । राज्य पाकर उन्होंने प्रजाका पालन किया । वे हमेशा सज्जनोंके अनुग्रह और दुर्जनोंके निग्रहका ख्याल रखते थे । उनका शासन अत्यन्त लोकप्रिय था इसलिये उन्हें जीवनमें-किसी शत्रुका सामना नहीं करना पड़ा था । सुप्रतिष्ठित महाराजने आर्य कन्याओंके साथ

इनका विवाह किया था । भगवान सुपार्श्वनाथ अपनी मनोरम चेष्ठाओंसे उन आर्य महिलाओंको हमेशा हर्षित रखते थे । बीच बीचमें इन्द्र, नृत्य गोष्ठी, वाद्य गोष्टी संगीत गोष्ठी आदिसे विनोद कराक भगवानकों प्रसन्न करता रहता था । उस समय सुपार्श्वनाथ जो सुख बोगते थे, शतांश भी किसी दूसरे को प्राप्त नहीं था । भोग बोगते हुए भी वे उनमें तन्मय नहीं होते थे, इसलिये उनके बोगीय भोग नूतन प्रकार से कर्म-बन्धके कारण नहीं होते थे । इस तरह सुख पूर्वक राज्य करते हुए जब उनकी आयु बीस पूर्वाङ्. कम एक लाख पूर्वकी रह गई तब उन्हें किसी कारणवश संसारके बढ़ानेवाले विषय भोगोंसे विरक्ति हो गई । उन्होंने अपनी पिछली आयुके व्यर्थ बीत जानेपर घोर पश्चात्ताप किया और राज्य कार्य, गृहस्थी, पुत्र मित्र आदि सबसे मोह छोड़कर बनमें जा तप करनेका दृढ़ निश्चय कर लिया । लौकान्तिक देवोंने भी आकर उनके विचारों का समर्थन किया । देव देवियोंने वैराग्य वर्ध्दक चेष्टाओंसे तपःकल्याणकका उत्सव मनाना प्रारम्भ किया । भगवान् सुपार्श्वनाथ राज्यका भार पुत्रको सौंपंकर देवनिर्मित मनोगति नामकी पालकीपर सवार हुए । देव उस पालकीको बनारसके समीपवर्ती सहेतुक बनमें ले गये । पालकीसे उतर कर उन्होंने गुरू जनोंकी सम्मति पूर्वक ज्येष्ठ शुक्ला व्दादशीके दिन विशाखा नक्षत्रमें शामके समय च ओंनमःसिध्देभ्यःछ कहते हुए दिगम्बर दीक्षा धारण कर ली । उनके साथमें एक हजार राजा और भी दीक्षित हुये ।

मुनिराज सुपार्श्वनाथने दीक्षित होते ही इतना एकाग्र ध्यान किया था । जिससे उन्हें उसी समय अनेक ॠध्दियां और मन : पर्यय ज्ञान प्राप्त हो गया था । दो दिनोंके उपवासके बाद वे आहार लेनेके लिये सोंमखेट नामके नगरमें गये । वहां राजा महेन्द्र दत्तने पड़गाह कर नवधा भक्तिपूर्व आहार दिया । पात्रदान के प्रभाव से राजा महेन्द्रदत्त के घरपर देवोंने पंचारश्चर्य प्रकट किये । भगवान सुपार्श्वनाथ आहार लेकर बन लौट आये । तदनन्तर वर्षोतक उन्होंने छद्‌मस्थ अवस्था में मौनपूर्वक तपश्चरण किया । एक दिन उसी सहेतुक बनमें दोनों दिनो के उपवास का नियम लेकर शिरीष वृक्षके नीचे विराजमान हुए । वहीं पर उन्होंने क्षपक श्रेणी चढ़कर क्रमसे अधःकरण अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण रू प भावों से मोहनीय कर्मका क्षय कर बारवां क्षीणमोह गुणस्थान प्राप्त किया । और उसके अन्तमें ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी और अन्तराय इन तीन घातिया कर्मोका क्षय कर केव्रलज्ञान प्राप्त कर लिया । अब तीनों लोक और तीनो कालके अनन्त पदार् उनके सामने हस्तामलवकवत् झकलने लगे । देवोंने आकर कैव्रल्य प्रप्ति का उत्सव किया । इन्द्रकी आज्ञा पाकर कुबेरने विस्तृत समवसरण बनाया । उसके बीचमें स्थित होकर पूर्णज्ञानी योगी भगवान् सुपार्श्वनाथने अपनी मौन मुद्रा भंग की-दिव्य उपदेश दिया । सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान सम्यक्चरित्र, उत्तम क्षमा आदि आत्म धर्मोका स्वरू प समझाया । चतुर्गति रू प संसार के दुःखोंका वर्णन किया, जिसके भयसे श्रोताओंके शरीर में रोमांच हो आये । कितने ही आसन्न भव नरनारियोंने मुनि आर्यिकाओंके ब्रत ग्रहण किये । और कितने पुरू ष, स्त्रियोंने श्रावक-श्राविकाओंके ब्रत

धारण किये । उपदेशके बाद इन्द्रने उनके अन्य क्षेत्रों में विहार करने के लिये प्रार्थना की थी अवश्य, पर वह प्रार्थना नियोगकी पूर्तिमात्र ही थी, क्योंकी उनका विहार स्वयं होता है ।

अनेक देशों मे घूम कर उन्होंने धर्म का खूब प्रचार किया । असंख्य जीव राशि को संसार के दु:कोसे छुड़ाकर मोक्ष के अनन्त प्राप्त कराये । अनेक जगह करने से उनकी शिष्य परम्परा भी बहुत अधिक हो गई थी । कितनी ? सुनिये - उनके समवसरणमे बल आदि पंचानवे गणधर थे, दो हजार तीस, ग्यारह अंग ओर चौदह पूर्वोके ज्ञाता थे, दो लाख चवालीस हजार नौ सौ बीस शिक्षक थे, नौ हजार अवधिज्ञानी थे, ग्यारह हजार केवलज्ञानी ते, पन्द्रह हजार तीन सौ विक्रिया ॠध्दिके घारण थे, नौ हजार एक सौ पचास मन:पर्यय ज्ञानी थे और आठ हजार छहसो वादी थे । इस तरह सब मिलकर तीन लाख मुनिराज थे । इनके सिवाय मीनार्याको आदि लेकर तीन लाख हजार आर्यिकाएं थीं । तीन लाक श्रावक, पांच लाख श्राविकाएं असंख्यात देव देवियां तिर्यंच थे । विहार करते कते जब उनकी आयु सिर्फ एक माह बाकी रह गई, तब वे सम्मेद शिखर पर पहुंचे और वहां योग निराध कर प्रतिमा योग से विराजमान हो गये । वहींसे उन्होंने शुक्ल ध्यान के अन्तिम बेद सुक्ष्म -

क्रिया प्रतिपाती और व्युपरत क्रिया निवृत्ति के व्दारा अघातिया चतुष्क का नाश कर फाल्गुन शुक्ला सप्तमी के दिन विशाखा नक्षत्रमें सूर्योदय के समय एक हजार मुनियोंके साथ मोक्ष प्राप्त कर लिया । देवोंने आकर उनके निर्वाण क्षेत्र की पूजा की ।

भगवान चन्द्रप्रभ

सम्पूर्ण : किमयं शरच्छशधर: किंवार्पितो दर्पण :
सर्वार्थावगते : किमेष विलसप्तीयूषपिण्ड : पृथु : ।
किंपुण्याणुमयश्चयोय मिति यद्वक्त्राम्बुजं शंक्यते : ।
सोयंचन्द्र जिनस्तपो व्यपहरन्नं हो भयाद्रक्षतात् ।। आचार्य गुणभद्र

क्या यह शरद ॠतु का पूर्ण चन्द्रमा है अथवा सब पदार्थो को जानने के लिये रक्खा हुआ दर्पण है ? क्या यह शोभायमान अमृत का विशाल पिण्ड है ? या पुण्य परमाणुओं का बना हुआ पिण्ड है ? इस तरह जिन के मुख-कमलको देखकर शंका होती हैं, वे श्रीचन्द्रप्रभ महाराज अज्ञानतम को नष्ट करते हुए पापरू पी भयसे हम सबकी रक्षा करें .

(१) पूर्वभव परिचय

असंख्यात व्दीप समुद्रो से घिरे हुए मध्य लोकमें एक पुष्कर व्दीप है । उसके बीच में चूड़ी के आकार वाला मुनषोत्तर पर्वत पड़ा हुआ है, जिससे उसके दो भेद हो गये हैं । उनमें से पूर्वार्ध भाग तक ही मनुष्यों का सद्भाव पाया जाता है । पुष्करार्ध व्दाप में क्षेत्र वगैरह की रचना घातकी खण्ड की तरह है अर्थात् जम्बूव्दीप से दूनी है । उनमें पूर्व और पश्चिम दिशा में दो मंदर-मेरू पर्वत हैं । पूर्व दिशा के मेरू से पश्चिम की ओर एक बड़ा भारी विदेह क्षेत्र है । उनमें सीता नदी के उत्तर तटपर एक सुगन्धि

नाम का देश है । जो हर एक तरह से सम्पन्न है । उस में श्रीपुर नाम का नगर था, जिस में किसी समय श्रीषेय नामका राजा राज्य करता था । वह राजा बहुत ही बलवान था, दयालु था, धर्मात्मा था और नीतिज्ञ ा था । वह हमेशा सोच विचारकर कार्य करता जिस से उसे कार्य कर पश्चाताप नहीं करना पड़ता था । उसकी महारानी का नाम क्षीकान्ता था । श्रीकांन्ताने अपने दिव्य सौन्दर्य से काम-कामिनी रति को भी पराजित कर दिया था । दोनों दम्पतियोंका परस्पर अटूट प्रेम था, इसलिये वे अपने को सबसे सुखी समझते हुए समय बिताते थे । धीरे-धीरे श्रीकान्ता का यौवन व्यक्तीत होनेको आया पर कोई संतान नहीं हुई इसलिये वह हमेशा दुखी रहती थी । एक दिन रानी श्रीकान्ता कुछ सहेलियों के साथ मकान की छतपर बैठ नगरकी शोभा निहार रही थी उसकी दृष्टी गेंद खेलते हुए सेठके लड़कोंपर पड़ी लड़कोंको देखते ही उसे पुत्र न होनेकी चिन्ताने धर दबाया । उसका प्रसन्न फूल - सा मुक मुरझा गया, मुखसे दीर्घ और गर्म गर्म श्वासें निकलने लगीं आंखोंसे आंसुओं की धारा बह निकली । उसने भग्न हृदय सो सोचा-जिसके ये पुत्र हैं उसी स्त्रीका जन्म सफल है । सचमुच, फलरहित लता के समान वन्ध्या (फल रहित) स्त्रीकि कोई शोभा नहीं होती है । सच कहा है कि पुत्र के बिना संसार शुन्य दिखता है । इत्यादि विचारकर वह छतसे नीचे उतर आई और खिन्न चित्त होकर शयनागार में पड़ी रही । जब सहेलियों व्दारा राजा को उसके खिन्न होने का समाचार मिला तब वह शीघ्र ही उस के पास पहुंचा ।

और कोमल शब्दों में दु:खका कारण पूछने लगा । बहुत बार पूछने पर भी जब श्रीकान्ता ने कोई जवाब नहीं दिया तब उसकी एक सहेलीने जो कि हृदय की बात जानती थी, राजा को छत परका समस्त वृतान्त कह सुनाया । सुनकर उसे भी दु:ख हुआ पर कर क्या सकता था ? आखिर धैर्य धारणकर रानी को मीठे शब्दों में समझाने लगा कि जो वस्तु मनुष्य को पुरू षार्थ से सिध्द नहीं हो सकती, उसकी चिन्ता नहीं करनी चाहिये । कर्मोके ऊपर किसका वश है ? तुम्ही कहो, किसी तीव्र पापका उदय ही पुत्र-प्राप्ति होने का बाधक कारण है इसलिये पात्र दान, जिनपूजन, व्रत, उपवास आदि शुभ कार्य करो जिससे अशुभ करामोका बल नष्ट होकर शुभ कर्मोका बल बढ़े ।

प्राणनाथ का उपदेश सुनकर श्रीकान्ताने बहुत कुछ अंसों में पुत्र न होने को शोक छोंड दिया और पहले की अपेक्षा बहुत अधिक पात्रदान आदि शुभ क्रियाएं करने लगी । एक दिन राजा श्रीषेन महारानी श्रीकान्ता के साथ बनमें घूम रहा था वहांपर उसकी दृष्टि एक मुनिराज के ऊपर पड़ी उसने रानी के साथ साथ उन्हें नमस्कार किया और धर्मश्रवण करने की इच्छासे उनके पास बैठे गया । मुनिराजने सारगम्भित शब्दोंमे धर्म काव्याख्यान दिया, जिससे राजा का मन बहुत ही हर्षित हुआ । धर्मश्रवण करने के बाद उसने मुनिराज से पूछा-नाथ ! मैं इस तरह कबतक गृह जंजाल में फंसा रहूंगा ? क्या कभी मुझे दिगम्बर मुद्रा धारण करने का सौभाग्य प्राप्त होगा ? उत्तर में मुनिराजने कहा राजन ! तुम्हारे हृदयमें हमेशा पुत्र की इच्छा बनी रहती है सो जबतक तुम्हारे पुत्र न होगा तबतक वह इच्छा तुम्हारा पिंड न छोड़ेगी । बस, पुत्र की इच्छाही तुम्हारे मुनि बनने में वाधक कारण है । आपकी इस हृदयवल्लभा

श्रीकान्ताने पूर्वभव में गर्भभार से पीड़ित एक नूतन युवति को देखकर निदान किया था कि मेरे कभी यौवन अवस्था में सन्तान न हो । इस निदानके कारण ही अबतक इसके पुत्र नहीं हुआ हैं । पर अब निदान बन्ध के कारण बंधे हुए दुष्कर्मोका फल दूर होने वाला है, इसलिये शीघ्र ही इस के पुत्र होगा । पुत्र को राज्य देकर आप भी दीक्षित हो जावेंगे । यह कहकर उन्होंने माहत्म्य बतलाकर राजा रानी के लिये लिये अष्टान्हि का ब्रत दिया । राजदम्पति मुनिराज के व्दारा दिये हुए ब्रतको ह्दयसे स्वीकार कर घर को वापिस लौट आये । जब अष्टान्हिक पर्व आया तब दोनोंने अबिषेक पूर्वक सिध्द यन्त्र की पूजा की और आठ दिनतक यथाशक्ति उपवास किये जिनसे उन्हें असीम पुण्य कर्मका बन्ध हुआ । कुछ दिनों बाद रानी श्रीकान्ताने रात्रिके पिछलें भागमें हाथी, सिंह, चन्द्रमा और लक्ष्मीका अभिषेक ये चार स्वप्न देखे । उसी समय गर्भाधान हो गया । धीरे धीरे उसके शरीर में गर्भके चिन्ह प्रकट हो गये, शरीर पाण्डु वर्ण हो गया, आंखों में कुछ हरापण दीखने लगा, स्तन स्तूप और कृष्ण मुक हो गये । उदर भारी हो गया और जिम्हाई आने लगी । प्रियतमा के शरीर में गर्भ के चिन्ह प्रकट हुए देखकर राज श्रीषेण बहुत ही हर्षित होता था । नव माह बाद उस के पुत्र उत्पन्न हुआ । राजा ने पुत्र के उत्पत्ति का खूब उत्सव किया याचकों को मनचाहा दान दिया, जिन पूजन आदि पुण्य कर्म कराये । ढलती अवस्था में पुत्र पाकर श्रीकान्ता को कितना आनंद हुआ होगा यह तुच्छ लेखनी से नहीं लिखा जा सकता ।

राजाने बन्धु बान्धकों की सलाह से पुत्र का नाम श्रीवर्मा रक्खा । श्रीवर्मा धीरे धीरे बढ़ने लगा । जैसे जैसे उस की अवस्था बढ़ती जाती थी वैसे वैसे ही उसके गुणोंका विकाश होता जाता था । जब कुमार राज्य कार्य संभालने के योग्य हो गया तब राजा उसपर राज्य का भार छोड़कर अभिलषित भोग भोगने लगा । एक दिन वहां के शिवंकर नामक उपवन में श्रीप्रभ नामक मुनिराज आये । बनमाली ने राजा के लिए मुनि आगमन का समाचार सुनाया । राजा श्रीषेणभी हर्षित चित्त होकर मुनिवन्दना के लिये गया । वहां मुनिराज के मुंह से धर्म का स्वरू प और संसारका दु:ख सुनकर उसके ह्दय में वैराग्य उत्पन्न हो गया जिससे उसने श्रीवर्माको-राज्य देकर शीघ्र ही जिन दीक्षा धारण कर ली । श्रीवर्मा राज्य पाकर बहुत प्रसन्न नहीं हुआ क्योंकि वह हमेशा उदासीन रहता था । उसकी यही इच्छा बनी रहती थी कि मैं कब साधुवृत्ति धारण करूं . पर परिस्थिति देखकर उसे राज्य स्वीकार करना पड़ा था । श्रीवर्मा बहुत ही चतुर पुरू ष था । उसने जिस तरह वाह्य शत्रुओं को जीता था उसी तरह काम, क्रोध आदि अन्तरडू. शत्रुओंको-भी जीत लिया था । एक दिन श्रीवर्मा परिवार के कुछ लोगोंके साथ मकान की छतपर बैठकर प्रकृतिकी अनूठी शोभा देख रहा था । कि इतनेमें आकाश से उल्कापात हुआ ।

उसे देखकर उसका चित्त सहसा विरक्त हो गया । उसने उल्का की तरह संसारके सब पदार्थोकी अस्थिरता को विचार कर दीक्षा धारण करनेका दृढ़ निश्चय कर लिया ओर दूसरे दिन श्रीकान्त नाम के बड़े पुत्र के लिये राज्य देकर श्रीप्रभ आचार्य के पास दिगम्बर दीक्षा ले ली । अन्तमें वह श्रीप्रभ नामक पर्वत पर सन्यास पूर्वक शरीर छोड़कर पहले स्वर्ग के श्रीप्रभ विमान में श्रीधर नाम का देव हुआ । वहां उसकी दो सागर की आयु थी, सात हाथ का दिव्य वैक्रियिक शरीर था, पीत लेश्या थी, वह दो हजार वर्ष बाद मानसिक आहार लेता और दो पक्ष बाद श्वासोच्छ्वास करता । उसे जन्म से ही अवधि ज्ञान था, अणिता

महिमा आदि ऋृध्दियां प्राप्त थीं । वहां वह अनेक देवाङ्.नाओंके साथ इच्छानुसार क्रीड़ा करता हुआ सुखसे समय बिताने लगा । दातकी खण्ड व्दीप में दक्षिण की ओर इष्वाकार पर्वत है ।